P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

उत्तराखण्ड हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रो के कृषि समुदायों द्वारा औषधीय पादपों का उपयोग

हितेन्द्र सिंह रावत
अतिथि शिक्षक,
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,हे०न०ब० गढवाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढवाल, उत्तराखण्ड भारत

योगम्बर सिंह फर्स्वाण
प्रोफेसर,
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड भारत

देवेन्द्र सिंह राणा
अतिथि शिक्षक,
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड भारत

सारांश

प्रकृति ने विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे एवं वनस्पतियाँ मनुष्य को विरासत के रूप में दिये हैं। मध्य हिमालय में बसा उत्तराखण्ड भी प्राण रक्षक औषधियों के अमूल्य भण्डार के लिए विश्व विख्यात है, जो प्राचीन समय से इस क्षेत्र में निवास करने वाली जातियों की चिकित्सा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार रहा है। उत्तराखण्ड के हिमालयी क्षेत्र में औषधियों की लगभग सात सौ प्रजातियाँ पायी जाती हैं। महाकवि कालीदास ने भी इस हिमालयी क्षेत्र को अपने महाकाव्यों में औषधीप्रस्थ अर्थात् जड़ी–बूटियों का नगर कहा है। हिमालय का यह पर्वतीय भू–भाग वास्तव में प्राचीन काल से ही प्राण रक्षक औषधीय वनस्पतियों का उत्पादक स्थल रहा है।खैर, बबूल, चिरचिरा, बज्रदन्ती, मुसली, आँवला, बहेड़ा, हरड़, कन्टेला, सतावरी, गिलोय, पिशूघास, जयन्त, वासिक, मजार, अमलताश, तेज, करेली, इन्द्रायण, पोस्त, भांग, ब्राहमी, वकायन, नीम, अश्वगंधा, शंखपुष्पी, सिंगरी, कमेला आदि प्रमुख औषधियों का प्रयोग यहाँ के निवासी रोग निवारणार्थ आज भी करते आ रहे हैं। इन सभी औषधियों तथा इनके द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार एवं इनके स्थानीय नामों का वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्द : मध्य हिमालय, औषधीय पौधे, मानसखण्ड, केदारखण्ड, अतीस, जटामासी, जम्बू, कुटकी, कीड़ा जड़ी आदि।

प्रस्तावना

मानव जीवन के उद्भव से पहले ही प्रकृति ने विभिन्न प्रकार की औषधियों एवं वनस्पतियों को उत्पादित कर दिया था। प्रकृति द्वारा उत्पादित इन औषधियों एवं वनस्पतियों में वे सारी गुणवत्तायें विद्यमान हैं, जो रोगी होने से बचाने तथा रोग को ठीक करने के लिए आवश्यक हैं[1]। प्रकृति ने विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे मनुष्य को विरासत के रूप में दिये हैं। मनुष्य शरीर के उद्भव के साथ ही रोगों की उत्पत्ति हुई, इसलिए हम यह कह सकते हैं, कि रोग भी उतने ही पुराने हैं, जितने कि मनुष्य देह। इन रोगों की उत्पत्ति के साथ ही या कुछ समय पश्चात् खोजकर्ताओं ने इनके उपचारों की खोज प्रारम्भ की। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि चिकित्सा शास्त्र उतना ही पुराना है, जितना कि मानव जीवन[2]।

मध्य हिमालय में बसा पौराणिक मानसखण्ड (कुमाँऊ मण्डल) एवं केदारखण्ड (गढ़वाल मण्डल) वर्तमान समय में उत्तराखण्डके नाम से जाना जाता है। प्रकृति ने प्राण रक्षक औषधियों का जिनता अतुल्य भण्डार मध्य हिमालय के इस भू–भाग को दिया है, शायद ही इतना अधिक जड़ी–बूटियों का भण्डार संसार के किसी अन्य भू–भाग को दिया होगा। इसीलिए इस भू–भाग को देवभूमि या स्वर्गभूमि के नाम से भी जाना जाता है[3]। हिमालय में जड़ी–बूटियों की लगभग सात सौ प्रजातियाँ पाई जाती हैं। सदियों के अनुभव और अनुसंधान के बाद ये औषधियाँ खोजी गई और उपयोग में लायी गई हैं। इन औषधियों के साथ मन्त्रों का सम्बन्ध भी जोड़ा जाता है[4]। देवभूमि की बहुमूल्य जड़ी–बूटियों का भरपूर उपयोग भारत में वैद्य एवं हकीम लोग अनादि काल से करते आ रहे हैं[5]।

हिमालय दिव्य औषधियों का उद्गम स्थल है। महर्षि चरक ने रोग निवारणार्थ जिन औषधियों का उल्लेख किया है। उनके लिए हिमालय को विशिष्ट भूमि माना है। ''हिमवानौषधि भूमिना श्रेष्ठत्'[6] अर्थात् औषधियों की प्राप्ति हेतु हिमालय भूमि उत्तराखण्ड सर्वश्रेष्ठ है। गढ़वाल हिमालयी भू–भागों में अनादि काल से ऋषि–मुनि आयुर्वेदाचार्यों की क्रीड़ा स्थली रहने के कारण यहाँ की चिकित्सा पद्वति भी वैदिक कालीन चिकित्सा का ही एक भाग है[7]।

महाकवि कालीदास ने भी हिमालय की औषधीय उपयोगिता को देखते हुए हिमालय की राजधानी का नाम औषधीप्रस्थ अर्थात् जड़ी–बूटियों का नगर कहा है। कवि भारवि ने भी अपने महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' में हिमालय की औषधियों का वर्णन किया है[8]। वास्तव में हिमालय में दिव्य औषधियों की प्राप्ति निश्चित् रूप से है, क्योंकि उष्ण कटिबन्ध में उगने वाली औषधियां उष्णवीर्य होती हैं, और हिमालय की औषधियाँ शीतवीर्य होने से विशेष उपयोगी एवं लाभकारी सिद्ध होती हैं[9]।

वास्तव में हिमालय का पर्वतीय भू–भाग अति प्राचीन काल से प्राणरक्षक औषधीय वनस्पतियों का उत्पादक स्थल रहा है। यहाँ होने वाली जड़ी–बूटियों की सैकड़ों प्रजातियों के औषधीय गुणों का वर्णन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में किया गया है[10]। हिमालय में अनेक महौषधियां हैं। इन औषधियों में रात्रि के समय चमक दिखाई देती है। भारवी ने भी लिखा है कि औषधियां दीपमालिकायें है, जिस प्रकार नीतिमान् राजा की राज्यलक्ष्मी संध्या, पूजन तर्पणादि गुणों से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर हमेशा उस राजा के प्रताप की अभिवृद्वि किया करती हैं, ठीक उसी प्रकार लोक पूज्य इस हिमालय पर औषधियां सम्पत्ति से परम शक्ति प्राप्त कर अहर्निश प्रज्वलित रहने से विश्राम नहीं कर पाती हैं[11]। आयुर्वेद के ज्ञाता चरक आदि वैद्य हिमालय में किरातों की सहायता से जड़ी– बूटियाँ पहचानते और प्राप्त करते थे, इन्होंने हिमालय की वन सम्पदा का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''कैरातिका रवनाति औषधम्'' अर्थात् किरात जनजाति हिमालय की औषधियों का संग्रह करती है[12]। युद्वकाण्ड में भी उत्तराखण्ड हिमालय में ऋषभ पर्वत और कैलाश शिखर के मध्य में स्थित औषधी पर्वत का विवरण हुआ है[13]। रामायण युद्वकाण्ड 74/26–23 के अनुसार जब श्रीराम–लक्ष्मण और समस्त वानर सेना इन्द्रजीत के बाणों से मूर्छित होकर पड़ी थी, तब जाम्वन्त ने हनुमान से आग्रह किया कि वे तुरन्त आकाशमार्ग से हिमालय में (मन्ध मादन और नन्दादेवी शिखर पुंज के मध्य में स्थित) औषधिप्रस्थ पहुँचे और वहाँ से मृतसंजीवनी, विशल्यकारिणी, सुवर्णकरणी और संघानी नामक महौषधियों को उखाड़ लावे।[14] श्रीराम, लक्ष्मण आदि उन महा–औषधियों की सुगन्ध सूंघकर स्वस्थ हो गये, उनकी सुगन्ध सूंघकर हताहत वानर भी सबके सब रात में सोकर उठे हुए प्राणियों की भाँति क्षण भर में निरोग हो उठकर खडे हो गये, तब हनुमान ने उस पर्वत शिखर को पुनः उसी स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ से उसे उखाड़ लाये थे(युद्वकाण 74/74–77)[15]।

गढ़वाल हिमालय आज भी बहुमूल्य जड़ी बूटियों का आगार है। यहाँ के द्रोणागिरी की संजीवनी जड़ी–बूटियाँ प्रसिद्ध हैं। इसलिए महर्षि भारद्वाज के नेतृत्व में आयुर्वेदज्ञ बावन ऋषियों ने इस क्षेत्र में एकत्र होकर स्वर्गाधिपति इन्द्र से आयुर्वेद का त्रिस्कन्धात्मक ज्ञान प्राप्त किया था (चरक संहिता, सूत्रस्थाना 1/11/14)[16]। कुलिन्द जनपद महाभारत में वनों में होने वाली औषधियों की नामावली महत्वपूर्ण है। उस वन में आयु, यश और बल प्रदान करने वाली वृद्धावस्था और मृत्यु के भय को दूर करने वाली, कष्ट की विनासिका सारी औषधियां चिर–विचित्र रूप में देदीप्यमान हो रही हैं[17], विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का धनी यह क्षेत्र प्राचीन काल से जड़ी–बूटियों के लिए प्रसिद्व रहा है। प्लीनी के विवरण से विदित होता है कि यहाँ से अनेक प्रकार की जड़ी–बूटियां जैसे जटामांसी, हिमालयन बरवेरी, कॉस्टस (संस्कृत कुष्ट) आदि का निर्यात् भारत के मैदानी तथा भारत से बाहर भी किया जाता था[18]। हिमालय की जड़ी–बूटियों की अशोक द्वारा स्थापित चिकित्सालयों के लिए बड़ी मांग थी[19]। महावंश के अनुसार हिमालय के देवता प्रतिदिन नागलता की सहस्त्रों दातुन, आंवला, हरीतिकी आदि औषधियां तथा सुन्दर वर्ण (रंग), रस और गन्ध वाले आम्रों को लेकर अशोक के पास पहुँचते थे। अशोक ने देश के विभिन्न भागों में तथा पड़ोसी देशों में भी मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालयों की स्थापना की थी, इन चिकित्सालयों में भी मुख्यतया हिमालय की जड़ी बूटियों का प्रयोग होता था[20]।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उत्तराखण्ड हिमालय में होने वाले औषधीय पादप तथा उन औषधीय पादपों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार का वर्णन करना है। जिनका प्रयोग यहां के जनमानष प्राचीन काल से करते आ रहे हैं

''मध्य हिमालय (उत्तराखण्ड) में प्राप्त औषधियां एवं उपयोग''

मध्य हिमालय (उत्तराखण्ड) में जड़ी बूटियों का असंख्य भण्डार है, जो प्राचीन समय से ही यहाँ की चिकित्सा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार रहा है। हिमालय में लगभग 700 प्रजातियां जड़ी–बूटियों की पायी जाती हैं[21]। प्राचीन साहित्य एवं ग्रन्थों में इस क्षेत्र को बहुत ही अमुल्य औषधियों का भण्डार माना जाता है। खैर, बबूल, चिरचिरा, बज्रदन्ती, मुसली, आँवला, बहेड़ा, हरड़, कन्टेला, सतावरी, गिलोय, पिशूघास, जयन्त, वासिक, मजार, अमलताश, तेज, करेली, इन्द्रायण, पोस्त, भांग, ब्राहमी, वकायन, नीम, अश्वगंधा, शंखपुष्पी, सिंगरी, कमेला आदि प्रमुख औषधियां उप हिमालयी क्षेत्र में पायी जाती हैं[23]। अत्यन्त प्रभावकारी औषधियां जैसे वत्सनाभ, जटामासी, कुटकी, निर्विसी, सालमपंजा, शंखपुष्पी आदि औषधियां उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित क्षेत्रों में ही पायी जाती है। च्यवनप्राश के मुख्य घटक अष्टवर्ग उत्तराखण्ड की ही देन हैं[24]। प्रकृति का यह खजाना सबसे अधिक उत्तराखण्ड के भोटान्तिक क्षेत्र में बिखरा पड़ा है और जड़ी बूटियों के सन्दर्भ में सर्वाधिक शोषित आज यही क्षेत्र हो गया है।[25] प्राचीन काल में अतिसार, अर्श, बहुमूत्र, प्रमेह, संग्रहिणी, कुष्ट, पामन् (पामां), खासी, ज्वर और हृदय रोग प्रमुख रोग थे। चर्मरोग, फोड़ा, सूजन, घेंघा, गंडमाला, मिर्गी, पक्षाघात, भगन्दर और विशूचिका आदि भी प्राणहारी रोग थे, सभी की चिकित्सा जड़ी बूटियों से की जाती थी।

उत्तराखण्ड के मध्य हिमालयी क्षेत्र की औषधियों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार उनके वनस्पतिक नाम, स्थानीय नामों के साथ ही उनके प्रयोगों का वर्णन निम्न हैः–

अतीस

अतीस उत्तराखण्डहिमालय में 2700 मी0 की ऊँचाई से लेकर 3800 मी0 की ऊँचाई तक पायी जाती है। इसका वानस्पतिक नाम एकोनिटम हैटेरोफिलम है। इसकी जड़े ज्वर, उदर सम्बन्धी रोगों में काम आती हैं। स्थानीय ग्रामीण घरेलू उपचार में मूल कन्दों का विशेष रूप से उपयोग करते है[27]। आज अनैतिक विदोहन के कारण यह प्रजाति लुप्तप्रायः की श्रेणी में आ गई है।

जटामासी

इसका वानस्पतिक नाम नारडोस्टैकिस है। जटामासी उत्तराखण्डहिमालय में 3000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3800 मीटर की ऊँचाई तक पायी जाती है। जटामासी, मधुर, कटु, कषाय, शीतवीर्य, कान्तिबल और आमोद देने वाली तथा कफ, पित्त, त्रिदोष, दाह, रक्तविकार, विषय और कुष्ठ को दूर करने वाली है। जटामासी के प्रकन्द और जड़े सुखाकर दवा के रूप में प्रयोग करते हैं। यह पौष्टिक, उत्तेजक तथा ग्रामीण लोग इसके मूल का प्रयोग हवन सामग्री में करते हैं।

दारूहल्दी (किल्मौड़)

इसका वानस्पतिक नाम बरबेरिस ऐसियेटिका है। उत्तराखण्डहिमालय में दारूहल्दी ग्यारह जातियां पाई जाती हैं[29]। यह 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3600 मी0 की ऊँचाई तक प्रायः पाया जाता है[30]। इसका पौधा 25 सेमी0 से 200 सेमी0 तक ऊँचा होता है। इसकी छाल लाल–भूरी व इसकी पत्तियाँ 2 सेमी0 से 4.5 सेमी0 लम्बी, किनारों से कांटेदार होती है। इसके फल बैंगनी रंग के होते हैं[31]। इसका उपयोग वर्तमान में ऐलोपैथी–होम्योपैथी, यूनानी एवं आयुर्वेदिक दवा बनाने में बड़ी मात्रा में प्रयोग होता है, जिसका उपयोग बुखार, कर्णरोग, नेत्ररोग, त्वचारोग, प्रमेह, पथरी आदि रोगों में होता है। इसकी जड़ों में बैरबरीन रासायनिक तत्व एवं फलों से मैलिक–टाइट्रिक एवं साइट्रिक अम्ल पाया जाता है[32]।

चौरा

यह हिमालय में 3000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3600 मीटर की ऊँचाई तक भिलंगना घाटी, भागीरथी घाटी, रैथल, मन्दाकिनी घाटी, अलकनन्दा घाटी, केदारनाथ, मुनस्यारी, पिथौरागढ़ आदि स्थानों पर पाया जाता है। इसका लैटिन नाम Angelica glaica Edgew है[33]। इसकी एक दूसरी प्रजाति भी हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है, जिसे कि यहाँ के निवासी रिखचोंरा कहते हैं। इसका मूल एवं बीज का स्थानिक मशालों के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा इसकी जड़े पाचन एवं उदर विकार में उपयोगी होती है।

जम्बू

इसका वानस्पतिक नाम एलियमस्ट्रोचि है[93]। यह उत्तराखण्डके ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप में पाया जाता है (चित्र सं0– 5.32)। उत्तराखण्ड़वासी इसकी पत्तियों का दाल व सब्जी में छौंक लगाते हैं। यह बात रोग में भी लाभकारी होता है[34]। वर्तमान में उत्तराखण्डहिमालय के लोग इसकी खेती भी करते है। इसका स्थानीय नाम लीथू है।

हिंसालू/हिंसर

हिंसालू का वैज्ञानिक नाम रूबस एलिप्टिकस है। इसे गुलाब की प्रजाति का बताया गया है। यह पौधा 3000 फीट की ऊँचाई से लेकर 7000 फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह बंजर, पथरीली भूमि में होने वाला झाड़ीनुमा कांटेदार पौधा है। इसके फल बालूसाही की आकृति के होते हैं। इसमें शर्करा, प्रोटीन, ऐश पैक्टिन तत्व होते हैं, जो एस्ट्रिजैट, फंब्रिफ्यूज तथा गुर्दे के इलाज में लाभदायक होते हैं, इसकी जड़ो के रस से डायरिया, पेचिस रोग को दूर करने में भारी सहायता मिलती है[35]।

कुटकी

इसका वानस्पतिक नाम पिकोराइजा कुरूआ है[36]। यह मध्य हिमालय के 3000–4000 मीटर तक के क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप में पाया जाता है। इसका मूल औषधि के रूप में काम में लाया जाता है। इसका प्रयोग वायु, खांसी एवं ज्वर में प्रयोग आता है[37]।

पाषाणभेद

इसका वानस्पतिक नाम बर्जीनिया लिगुलेटा है[38]। इसका स्थानीय नाम सिलफाडू है। इसका मूल दवा के काम में आता है। यह मध्य हिमालय में 1800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2700 मीटर की ऊँचाई तक प्राप्त होता है[39]। इसके मूल का प्रयोग पथरी रोगों के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त हृदय रोग एवं प्लीहा रोग में भी यह उपयोगी होता है[40]।

सालममिश्री या सालमपंजा

सालममिश्री का वानस्पतिक नाम यूलोफिया केम्पेट्रिस है। इस पौधे का कन्द एवं जड़ों का उपयोग आयुर्वेदिक दवा बनाने में होता है। इसकी जड़े मधुमेह तथा धातु रोग में लाभप्रद होती है[41]।

डोलू/आर्चा

इसका स्थानीय नाम डोलू आर्चा है। व्यापारिक नाम रूबाब एवं रेवबन्दचीनी है। इसके मूल तथा अन्य भाग काम में आते हैं। बैद्य–हकीम इसका उपयोग टॉनिक, चोट, मोच तथा पीलिया रोग में करते हैं[42]।

ब्राहमी

इसका वानस्पतिक नाम सैन्टेला ऐसियेटिका है। ब्राहमी की पत्तियों के चूर्ण को दूध में मिश्रित कर मन्दबुद्वि वाले बच्चों को दिया जाता है तथा इसकी पत्तियों के रस को सामान्य ज्वर एवं पीलिया से पीड़ित व्यक्ति विशेष को देने से लाभ मिलता है[43]।

मजिष्ठा

इसकी लता उत्तराखण्डमें शिवालिक से महाहिमालय तक के क्षेत्रों के वनों एवं बंजर भूमि में प्राकृतिक रूप में पाई जाती है। दवा में काम आने वाला इसका अंग मूल है, इसी का उपयोग दवा बनाने तथा लाल रंग बनाने में होता है। यह कफ, पित्तशमन, रक्तविकार, प्रमेह, नेत्र, कान तथा योनि रोगों में काम आती है[44]।

हत्थाजड़ी

यह उत्तराखण्डके ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पायी जाती है, लेकिन वर्तमान में इसके अनियमित दोहन के कारण यह दिन–प्रतिदिन कम हो रही है। यह वीर्यवर्द्वक, वातनाशक होती है। इसकी तासीर गर्म होती है[45]। आज भी उत्तराखण्डहिमालय के निवासी हत्थाजड़ी का प्रयोग

बहुतायत करते हैं। इसका प्रयोग घाव भरने आदि के लिए करते हैं।

बालझड़ी

यह भी उत्तराखण्डहिमालय में बहुतायत में पायी जाती है। इसका प्रयोग लोग बालों को झड़ने के रोकथाम में करते हैं।

भेतकेश/भूतकेशी

इसका वानस्पतिक नाम Selinum Wallichianum है। भूतकेश की दोनों प्रकार की जातियाँ उत्तराखण्डहिमालय में 2400 मी0 से लेकर 3600 मी0 तक की ऊँचाई पर भिलंगना घाटी, भागरथी घाटी, अलकनन्दा घाटी, मन्दाकिनी घाटी आदि स्थानों पर प्राप्त होती है[46]। व्यापारिक दृष्टि से इसके मूल का संग्रह इन घाटियों के व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इस क्षेत्र के ग्रामीण लोग इसके मूल का उपयोग ग्रहबाधा एवं भूतबाधा के लिए करते है।

पुष्कर मूल

यह उत्तराखण्ड में 2700 मी0 की ऊँचाई पर पाया जाता है। इसका औषधि के रुप में प्रयोग में आना वाला अंग इसका मूल है। ग्रामीण लोग इसके मूल का उपयोग कृमि रोग तथा उदर विकार के लिए करते हैं।

विदेशी जीरा

इसका वानस्पतिक नाम Carum Carvi Linn है। यह उत्तराखण्डके लघुहिमालय से महाहिमालय क्षेत्रों में बीज द्वारा आसानी से पैदा किया जा सकता है[47]। कुमाऊँ क्षेत्र के मिलमवासी व्यापार के लिए इसकी खेती करते हैं। यह एक द्वि–वर्षीय पौधा है। इसका उपयोग वर्तमान में सुगन्धित तेल बनाने, ज्वर, उदरशूल, खुजली तथा अजीर्ण रोगों में किया जाता है।

कीड़ा जड़ी/यारसागुम्बा

यह औषधि उत्तराखण्डहिमालय के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में प्राप्त होती है। इसके अनियमित दोहन के कारण यह औषधि समाप्ति पर है। भोट क्षेत्र में यह औषधि बहुतायत से प्राप्त होती है। 1994–95 से पहले यारसागुम्बा की चर्चा नहीं होती थी। 1995 में दारमा यात्रा पर आये तिब्बती लामा ने इसकी जानकारी दारमा वासियों को दी। तिब्बत तथा चीन में यह पिछले तीन हजार साल से प्रचलन में बतायी जाती है। अब कीड़ा–जड़ी का एकत्रीकरण पिण्डारी क्षेत्र तक होने लगा है। छिपलाकेदार तथा दारमा चौदांस क्षेत्र में यह जड़ी बहुतायत में मिलती है[48]।

ब्रहमकमल

उत्तराखण्डहिमालय के उच्च शिखरीय क्षेत्रों में ब्रहमकमल भी बहुतायत से पैदा होता है, जिसे यहाँ के निवासी कौंल कहते है(चित्र सं0– 5.38)। इसका वैज्ञानिक नाम ससुरिया ओमाल्टा है। इसका बीज तथा जड़ औषधि उपयोग में लाया जाता है। कटे अंग पर जड़ का लेप तथा मानसिक विकृति पर इसके बीज के तेल का मालिश करने से स्वास्थ्य लाभ होता है।

इन जड़ी–बूटियों के अलावा भी उत्तराखण्डहिमालय में अनेक प्रकार की जड़ी–बूटियाँ या औषधियाँ प्राप्त होती हैं। जिनका उपयोग यहाँ के निवासी विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए करते हैं। वर्तमान समय में इन जड़ी–बूटियों का दोहन तीव्र गति से हो रहा है, जिससे कि कई महत्वपूर्ण जड़ी–बूटियाँ समाप्ति के कगार पर है। ये अतीस, जटामासी, सालम, मिश्री, पत्थरलोंग, डोलू, सोमलता, मिख, मैदा तथा सालमपंजा थी[50]।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट रुप से देखने में आया है कि उत्तराखण्ड के मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में निवासरत समुदायों द्वारा प्राचीन समय से ही विभिन्न प्रकार की वानस्पतिक औषधियों का उपयोग, वर्तमान में उन्हीं पद्धतियों को अपनाते हुए निरन्तर किया जा रहा है, आज भी सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था सुलभ न होने से वैद्यक पद्वति से ही सारे रोगों का उपचार किया जाता है। वैद्य का परम्परागत प्रचलन आज भी शेष है, वह वंशानुगत शिक्षा का परिणाम है। वर्तमान समय में जिन औषधियों की मांग अधिक है, उनका दोहन अवैज्ञानिक ढंग से किया जा रहा है, जिससे अनेक औषधीय वनस्पतियाँ लुप्तप्राय हो रही हैं। ये वनस्पतियाँ अधिकांशतः बुग्यालों में पायी जाती हैं।

पाद टिप्पणी

1. *शर्मा, डॉ0 रवीन्द्र, औषधीय एवं सुगन्ध पौधों की कृषि तकनीक, पृष्ठ 3*
2. *उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 5*
3. *शाह, उमेश चन्द्र, ''उत्तराखण्ड की जड़ी बूटियों का पर्यावरण में योगदान'' पृष्ठ 155*
4. *रावत, गोपाल सिंह, कालाकोटी, बहादुर सिंह तथा पांगती,यशपाल सिंह, ''हिमालय की उजड़ती दुर्लभ संपदा'' पृष्ठ 86*
5. *शाह, उमेश चन्द्र, ''उत्तराखण्ड की जड़ी बूटियों का पर्यावरण में योगदान'' पृष्ठ 155*
6. *पदमभूषण, शास्त्री सत्यनारायण, चरक संहिता, पृष्ठ 21*
7. *सकलानी, दिनेश चन्द्र, दास, पवन एवं सेमवाल, दयाधर, गढ़वाल हिमालय में पारम्परिक लोक चिकित्सा पद्वति परम्परा एक ऐतिहासिक परिदृश्य, पृष्ठ 293*
8. *थपलियाल, डॉ0 एस0एन0, उत्तराखण्ड हिमालय की जीवनदायिनी औषधियाँ, पृष्ठ 33*
9. *भट्ट, मदन चन्द, हिमालय का इतिहास भाग–एक, पृष्ठ 13*
10. *कण्डारी, युद्ववीर सिंह, गढ़वाल हिमालय की भोटिया जनजातिः एक सामाजिक एवं भौगोलिक अध्ययन, पृष्ठ 98*
11. *कुलश्रेष्ठ, प्रो0 सुषमा, शुक्ला, प्रो0 लक्ष्मी, कुलश्रेष्ठ, डॉ0 आशा, संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण, पृष्ठ 373*
12. *सकलानी, दिनेश, पवन दास एवं सेमवाल,दयाधर, ''गढ़वाल हिमालय में पारम्परिक लोक चिकित्सा पद्वति की परम्परा–एक ऐतिहासिक परिदृश्य'' पृष्ठ 291*

13. ड़बराल, डॉ0 शिव प्रसाद, कुलिन्द जनपद उत्तराँचल–हिमांचल का प्राचीन इतिहास (रामायण काल से बुद्व निर्वाण तक), पृष्ठ 18
14. ड़बराल, डॉ0 शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (कैंत्युरी राजवंश का उत्थान एवं समापन), कार्तिकेयपुर का कैंत्युरी राजवंश (सं0 797 वि0 1057 वि0) पृष्ठ 130
15. ड़बराल, डॉ0 शिव प्रसाद, कुलिन्द जनपद, उत्तरॉचल–हिमांचल का प्राचीन इतिहास (रामायण काल से बुद्व निर्वाण तक), पृष्ठ 19
16. सिंह, भजन, आर्यों का निवास स्थान मध्य हिमालय, पृष्ठ 176
17. ड़बराल, डॉ0 शिव प्रसाद, कुलिन्द जनपद उत्तरॉचल–हिमांचल का प्राचीन इतिहास रामायण काल से बुद्व निर्वाण तक, पृष्ठ 47
18. नेगी, डॉ0 विधाधर सिंह, कुमाऊँ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (11वीं से 18वीं शताब्दी ई0), पृष्ठ 190
19. ड़बराल, शिव प्रसाद, केदारखण्ड, पृष्ठ 35
20. ड़बराल, शिव प्रसाद, कुलिन्द जनपद का प्राचीन इतिहास, भाग–2, पृष्ठ 264–65
21. गोदियाल, डॉ0 जे0के0 एवं डोबरियाल, डॉ0 कुसुम, गढ़वालः संस्कृति, कला एवं साहित्य, पृष्ठ 28
22. रावत, डॉ0 मदन स्वरूप सिंह, हिमालय का क्षेत्रीय स्वरूप एवं पर्यावरण, पृष्ठ 49
23. काला, एस0पी0, एवं गौड, आर0डी0, ए कन्ट्रीव्यूशन टू द फ्लोरा ऑफ गोपेश्वर इन वेजीटेशनल वैल्थ ऑफ हिमालय, पृष्ठ 347–413
24. थपलियाल, डॉ0 एस0एन0, उत्तराखण्ड हिमालय की जीवनदायिनी औषधियाँ, पृष्ठ 33
25. रावत, गोपाल सिंह, कालाकोटी, बहादुर सिंह तथा पांगती,यशपाल सिंह ''हिमालय की उजड़ती दुर्लभ सम्पदा'', पृष्ठ 86
26. ड़बराल, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास भाग–3, पृष्ठ 32
27. उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 79
28. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवनदायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 71
29. नेगी, डॉ0 विधाधर सिंह, कुमाँऊ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (11वीं सदी से 18वीं शताब्दी तक), पृष्ठ 192
30. उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 89
31. रौतेला, लक्ष्मण सिंह, ''पर्वतीय कुमाऊँ में भेषजिकी का ऐतिहासिक अध्ययन'', पृष्ठ 34
32. मिश्रा, पं0 नित्यानन्द एवं पाण्डेय, शिवचरण पर्यावरण, संस्कृति, प्रदूषण एवं संरक्षण, पृष्ठ 157
33. उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 146
34. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवनदायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 71
35. नैथानी, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड गढ़वाल का जनजीवन भाग–2, पृष्ठ 50
36. लखेड़ा, आर0पी0, गढ़ गौरव, पृष्ठ 105
37. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवन दायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 71
38. लखेड़ा, आर0पी0, गढ़ गौरव, पृष्ठ 106
39. उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 137
40. लखेड़ा, आर0पी0, गढ़ गौरव, पृष्ठ 106
41. नेगी, डॉ0 विधाधर सिंह, कुमाँऊ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (11वीं सदी से 18वीं शताब्दी तक), पृष्ठ 193
42. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवन दायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 77
43. पाण्डेय, दीप चन्द्र, एवं पाण्डे, पी0सी0,''कुमाऊँ हिमालय का लोक वनस्पति विज्ञान'', पृष्ठ 178
44. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवन दायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 63
45. वही, पृष्ठ 74
46. उनियाल, मायाराम, उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका, पृष्ठ 147
47. शाह, उमेश चन्द्र, ''मध्य हिमालय की जीवन दायिनी जड़ी–बूटियाँ'', पृष्ठ 73
48. शाह, अनूप, ''वनस्पतियाँ और वन्य जीव'' पृष्ठ 323
49. बिष्ट, डॉ0 शेर सिंह, मध्य हिमालयी समाज, संस्कृति एवं पर्यावरण, पृष्ठ 77
50. नेगी, डॉ0 विधाधर सिंह, कुमाऊँ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (11वीं सदी से 18वीं शताब्दी तक), पृष्ठ 193